पुस्तकालयों का संचालन शिक्षा का ही आनुषंगिक हिस्सा है। पुस्तकालय स्कूली शिक्षा से इतर सीखने का माध्यम होते हैं। इस लेख में पुस्तकालयों की जरूरत को समाज में रचनात्मक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक गतिविधियों के मंच के रूप में देखा गया है। यह लेख बच्चों के लिए वैकल्पिक गतिविधियां सुझाता है जिससे कि उनकी रचनात्मक ऊर्जा को दिशा मिल सके और यह तभी संभव है जब कि पुस्तकालय उनकी अपेक्षाओं पर खरा उतरे।

बेहतर समाज के निर्माण में पुस्तकालय की भूमिका

❑ दिनेश पटेल

क्यों जरूरी हैं पुस्तकालय ?

पुस्तकालय एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्था है जो, समाज के सर्वांगीण विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसी भी संस्था को सामाजिक तभी कहा जा सकता है जब उसकी उत्पत्ति तथा उसका विकास समाज के साथ जुडा हो एवं उनका उद्देश्य भी सामाजिक हो। साथ ही उस सामाजिक संस्था को अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए नई व परिवर्तनशील सामाजिक व्यवस्था के अनुसार स्वयं को भी सतत परिवर्तनशील व क्रियाशील बने रहना पड़ता है। तभी वह सामाजिक व सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया में अपनी सक्रिय भागीदारी निभा सकती है। अन्यथा वह समाज से इतर हाशिए पर कर दी जाएगी। आजकल के पुस्तकालयों को अगर हम देखें तो उनकी स्थिति कमोबेश ऐसी ही है जैसी घर में एक बूढ़े व्यक्ति की होती है।

पुस्तकालय की जरूरत यहीं आकर खत्म नहीं हो जाती। वह इससे भी कुछ कदम आगे बढ़कर समाज में लोगों के बीच एक रचनात्मक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक गतिविधियों का मंच है जहां हर किस्म के लोगों, विशेषकर बच्चों व महिलाओं के लिए पुस्तकें तो होनी ही चाहिएं। इसके इतर अन्य सृजनात्मक गतिविधियों, बैठकों, पुस्तक चर्चाओं, सेमिनार.. आदि व्यवस्थाओं की भी दरकार है। इसमें हर मिजाज के लोग न केवल अपनी सक्रिय भागीदारी कर सकते हैं बल्कि अपनी ऊर्जा व कौशल का भरपूर इस्तेमाल भी कर पाते हैं। लेकिन यह तभी संभव है जब सचमुच पुस्तकालय समाज की इन जरूरतों के मुताबिक अपेक्षानुसार खरा उतरने की क्षमता रखता हो। जहां तक सरकारी पुस्तकालयों की बात है, उनकी क्या स्थिति है ये किसी से छिपा नहीं है। फिर चाहे वह ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड की बात हो, राजीव गांधी शिक्षा मिशन के पुस्तकालयों की बात हो या फिर हाल ही में शासन द्वारा सर्व शिक्षा अभियान के तहत संचालित किए जा रहे ग्रामीण पुस्तकालयों की। सरकारी योजना कोई भी हो जिस ताबड़तोड़ अति-उत्साह और बगैर किसी गंभीर व दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य के उसे लागू किया जाता है उतनी ही बेजा ढंग से वह औंधे मुंह गिर भी जाती हैं। इन योजनाओं का अमूमन यही हश्र होता है ऐसी तमाम शासकीय योजनाओं को लेकर हमेशा से सवाल उठते रहे हैं और भविष्य में भी उठते रहेंगे। पर क्या हम इसके इतर अन्य विकल्प खोज पाने की जरूरत समझते हैं ? यदि ऐसा नहीं सोचते तो स्थितियां बदलेंगी इसकी संभावना की गुंजाइश बहुत कम ही है।

सवाल रोचकता का

पुस्तकालय की अवधारणा हमारे दिमाग में आमतौर पर शांत एवं गंभीर किस्म की प्रकृति के रूप में दर्ज है। जहां शांतिपूर्वक एवं अनुशासित रूप में बैठकर किताबें सिर्फ पढ़ी एवं जारी की जाती हैं इससे ज्यादा कुछ नहीं। इस नजरिए को बदलने की आवश्यकता है। यकीनन हमने अपने 'चकमक क्लबों' के अनुभव से यह सीखा है वरना क्या कारण है कि सरकार की तमाम योजनाएं पुस्तकालय की महत्ता को प्रतिपादित करने व पुस्तक संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए लागू की गईं और उनका परिणाम कुछ नहीं निकला ? पुस्तकालय को महज किताबों के भण्डारण के रूप में देखे जाने की प्रवृत्ति से भी हमें बचना होगा। दरअसल यह अपने आप में साहित्यिक, सांस्कृतिक और रचनात्मक गतिविधियों का सक्रिय व

क्रियाशील केन्द्र होना चाहिए। और इसी रूप में अगर हम इसे देखने का नजरिया बना पाएंगे तभी कुछ रचनात्मक किए जाने की संभावना को बल मिलेगा। अव्वल तो हमारे यहां पुस्तकालय उपलब्ध ही नहीं हैं और जो कुछ हैं वहां वे बेजान और मृतप्राय: हैं। यानी कुल मिलाकर वे अप्रासंगिक हो गए हैं। अगर ये मान भी लिया जाए कि सूचना की क्रांति की इस आवोहवा के दौर में लोग किताबों से बेरुखी दर्शाते जा रहे हैं, पर क्या हमने कभी सोचा कि जिस तेजी से व जिस रूप में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने अपने आपको आवाम के बीच प्रस्तुत किया है क्या उसी रूप में या उतनी ही तेजी के साथ हमने किताबों को समाज के बीच प्रस्तुत करने की जहमत उठाई? यकीनन इसका जवाब नहीं में होगा। दरअसल हमने सूचना क्रांति के बरक्स किताब को विकल्प के रूप में पेश किया ही नहीं। अगर ऐसा होता तो आज परिदृश्य कुछ अलग होता।

विकल्प की तलाश-'चकमक क्लब' (बाल गतिविधि केन्द्र) का अनुभव

अगर हम कुछ ऐसे उदाहरणों पर गौर करें तो पर्याप्त विकल्प और बेहतर ढांचे जरूर तलाशे जा सकते हैं। यहां मैं मध्य प्रदेश में कार्यरत संस्था एकलव्य द्वारा देवास जिले में संचालित किए गए ग्रामीण पुस्तकालयों के अनुभव को आपके साथ बांटना चाहूंगा। ये पुस्तकालय इस उद्देश्य से प्रारंभ किए गए थे ताकि समाज में पुस्तक संस्कृति की एक व्यापक परंपरा विकसित हो और लोग दुनिया को एक अलग नजरिए से देख पाने की दृष्टि अपने अंदर विकसित कर पाएं। 90 के दशक में एकलव्य ने देवास जिले के तकरीबन 100 से अधिक ग्रामीण एवं शहरी इलाकों में पुस्तकालय शुरू किए थे। ये पुस्तकालय दरअसल 'चकमक क्लब' के नाम से जाने गए। बच्चों के बीच गतिविधि केन्द्र या गतिविधि समूह बनाने के दरम्यान बच्चों से चर्चा के परिणामस्वरूप ये बात निकलकर आई कि अपने समूह का नाम 'चकमक क्लब' ही रखेंगे। इस नाम के रखने के पीछे मकसद था कि बच्चे एकलव्य द्वारा प्रकाशित मासिक बाल विज्ञान पत्रिका 'चकमक' से परिचित थे। वे उसे नियमित पढ़ते तो थे ही, उसमें प्रकाशित होने वाली तमाम गतिविधियां भी रुचि से करते थे। साथ ही बच्चे कविता, चित्र, कहानी, अपने अनुभव आदि के जरिए चकमक में भागीदारी भी करते थे। इस तरह यह पत्रिका उन्हें अपने आप बहुत कुछ सीखने-सिखाने में मददगार साबित हुई। 'चकमक क्लब' बच्चों द्वारा संचालित पुस्तकालय-सह बाल-गतिविधि केन्द्र हैं, जहां आमतौर पर 10 से 16 वर्ष तक की उम्र के बच्चे अधिक संख्या में जुड़ते हैं। जिसका मुख्य उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता और कौशल को प्रोत्साहित करना है। साथ ही बच्चों को उनकी प्रतिभा को पहचानने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध करवाना है। यह कार्य बच्चों की भागीदारी से सहज व अनौपचारिक वातावरण में सीखना-सिखाना पद्धति से किया जाता है।

बच्चे स्कूली दुनिया से दूर अपने मोहल्ले, गांव या कस्बे में 'चकमक क्लब' से जुड़कर अपने आपको महत्त्वपूर्ण मानते हैं । उनके ख्याल से क्लब ने उन्हें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी, सीखने-सिखाने के मौके दिए, देश-प्रदेश और जिले में जगह-जगह बाल मेले व प्रशिक्षण देने के अवसर उपलब्ध कराए। उन्हें कई सारी शैक्षिक व सामाजिक प्रक्रियाओं को देखने-समझने और उसे महसूस करने के जो अवसर दिए जिससे उनके व्यावहारिक जीवन में कई आधारभूत परिवर्तन हुए हैं। ये बच्चे आपको उमंग, ताजगी, उत्साह, आत्मविश्वास, तार्किकता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भरे-भरे नजर आते हैं। 'चकमक क्लब' दरअसल बच्चों में आत्मविश्वास बढ़ाने, विभिन्न विषयों की अवधारणाओं को समझने, अपनी क्षमताओं को बढ़ाने, नेतृत्व शक्ति का विकास करने, बच्चों को सक्रिय कर संगठित करने का सशक्त माध्यम है।

इन बाल गतिविधि केन्द्रों के जरिए तमाम गतिविधियां संचालित की जाती हैं। इन्हें व्यवस्थित रूप से संचालित करने हेतु प्रशिक्षण शिविर, कार्यशालाएं एवं बाल मेले समय-समय पर आयोजित किए जाते हैं । जिसमें बाल मेला प्रमुख है। बाल मेलों के माध्यम से विशेष रुचि एवं उत्साही बच्चों की पहचान की जाती है। इन बच्चों को उनकी रुचि के अनुरूप गतिविधियों का प्रशिक्षण दिया जाता है, बाद में यही प्रशिक्षित बच्चों के समूह बाल मेले आयोजित करते हैं एवं बाल गतिविधियों के स्रोत व्यक्ति के रूप में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। शिविरों, कार्यशालाओं के दौरान आपस में एक-दूसरे को जानने-समझने का अच्छा मौका होता है। प्राय: हम एक दूसरे से पारिवारिक जानकारियों के आदान-प्रदान से लेकर समाज के स्वरूप व प्रक्रियाओं पर विस्तार से बातचीत भी करते हैं। ताकि शिक्षा, समाज और बदलाव के व्यापक परिप्रेक्ष्य कहीं न कहीं उभरकर सामने आ सकें। मुद्दे कभी-कभी गंभीर भी होते हैं जैसे समाज में गैर बराबरी, जाति व्यवस्था, आर्थिक और राजनैतिक पहलू । किशोर-किशोरियों खासतौर पर इन विषयों को लेकर अधिक संवेदनशील होते हैं। इसलिए इनके साथ दोस्ताना ढंग से सहजतापूर्वक और खुले मन से बातचीत की जाती है ताकि गतिविधियां, दक्षताएं, कौशल, जानकारी के साथ-साथ प्रजातांत्रिक मूल्यों को भी वे आत्मसात कर पाएं और इन मूल्यों को दैनिक जीवन में व्यवहार में अपना सकें। प्रशिक्षण कार्यशालाओं में चूंकि

शिक्षक और प्रशिक्षणार्थी के बीच कोई विशेष फर्क नहीं किया जाता इसलिए ये बच्चे भी खुलकर अपनी बात कह पाते हैं - अपने घर, समाज, गांव और सामाजिक प्रक्रियाओं के बारे में। इस तरह वे मिलकर एक साझा ख्वाब बुनते हैं - एक बेहतर कल का शिक्षित और स्वस्थ समाज का।

रचनात्मक लेखन की पहल-दीवार अखबार और बाल पत्रिकाएं

'चकमक क्लब' के अनुभव से ही बात शुरू की जाए तो 'चकमक क्लब' का इतिहास अपने आप में रचनात्मक गतिविधियों से भरपूर काफी दिलचस्प और अनूठे किस्म का रहा है। यहां मैं कुछ रोचक व प्रमुख गतिविधियों के हवाले से अपनी बात रखूंगा। जिसमें रचनात्मक लेखन व दीवार अखबार को शामिल किया जा सकता है। ये दोनों ही गतिविधियों 'चकमक क्लब' के हर केन्द्र पर नियमित-अनियमित रूप से आयोजित की जाती रही हैं जिसमें हमें बच्चों की लेखन कला, चित्रकला, भाषा शैली, लेआउट आदि में आशातीत वृद्धि देखने को मिली। बच्चों के बीच लिखने-पढ़ने का कौशल विकसित करने कि लिए हमने उन्हें अपने अनुभव लिखने, चित्र बनाकर चकमक में भेजने हेतु प्रोत्साहित किया। जब बहुत अधिक संख्या में बच्चे नियमित रूप से लेखन की इस प्रकिया से जुड़े तो उन्हें 'चकमक' में पर्याप्त स्थान नहीं मिल सका। अत: हमने साप्ताहिक दीवार अखबार निकालने की शुरूआत की। जब बात इससे भी बनती नहीं दिखी तब शुरूआत हुई साईक्लोस्टाइल पत्रिकाएं निकालने की। यह शुरूआत देवास से निकलने वाली 'बाल कलम' पत्रिका से हुई। बाद में जिले भर से इस तरह की 9 अलग-अलग पत्रिकाएं निकलीं। इन पत्रिकाओं में बच्चे अपने अनुभव, चित्र, कहानी, कविता, चुटकुले, पहेलियां आदि लिखते। इसके बाद हमने हर 'चकमक क्लब' में, जहां से पत्रिकाएं निकलती थीं, बच्चों की एक सम्पादकीय टीम बना दी जो बच्चों से रचनाएं लिखवाने एवं एकत्रित करने से लेकर चयन, संपादन एवं डमी बनाने का काम करती। दो-तीन स्थानों पर तो हमने सस्ती और सुंदर हस्तचलित साईक्लोस्टाइल मशीन उपलब्ध करा दी जिससे ये बच्चे स्वयं अपने हाथ से स्टेंसिल लिखते और साईक्लोस्टाइल करने लगे। इससे अधिक संख्या में बच्चों की रचनाओं को प्रकाशित करने का मंच मिला एवं उनके लिखने की प्रकृति भी बढ़ी।

पुस्तकालय-सृजनात्मकता के विकास का साधन

सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में कार्यशालाओं, प्रशिक्षण शिविरों की अहम भूमिका होती है। हमारी अधिकांश कार्यशालाएं/शिविर बहुत सफल रहे हैं। शायद यह अपने मुंह मियां मिट्ठू बनने जैसी बात है लेकिन यह सच है, कि इनमें बच्चों ने न केवल हिस्सा लिया बल्कि लगन से सीखा, जाकर दूसरों को सिखाया और कार्यशाला की भावना को आत्मसात भी किया। यह हमारे लिए सबसे बड़ी उपलब्धि की बात है। हमारी कार्य पद्धति भी ऐसी रही कि हमने बच्चों को कभी बच्चे नहीं समझा, उन्हें बराबरी का दर्जा दिया और अपना साथी मानकर उनकी बात को महत्त्व दिया, समझने का प्रयास किया, शंकाओं का समाधान करने की भरपूर कोशिश की। और शायद यही वजह रही कि इन गतिविधियों से निकलकर जो बच्चे आज बड़े हो चुके हैं जिनकी एक लंबी फेहरिस्त है, वे इस प्रक्रिया से निकलकर काफी कुछ हासिल कर चुके हैं या हासिल कर पाने की प्रक्रिया में हैं - वर्तमान में इनमें से बहुत से लोग पत्रकार, डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक, सामाजिक कार्यकर्ता, स्कूल संचालक, पार्षद, फोटोग्राफर, चित्रकार आदि कई अच्छे पेशे से जुड़े हुए हैं। उल्लेखनीय है इसमें से अधिकांश बच्चे ग्रामीण व कस्बाई पृष्ठभूमि से सरोकार रखने वाले हैं। एक और महत्त्वपूर्ण बात, ये बच्चे समाज में एक विशेष किस्म के भिन्न दृष्टिकोण लिए अपनी जगह बनाए हुए हैं। वे दुनिया को अन्य लोगों की अपेक्षा एक नए ढंग से देखने-समझने की समझ के साथ अपने-अपने कार्यों में लगे हुए हैं।

पुस्तकालय आंदोलन को सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक माहौल की वास्तविकताओं से अलग करके बिलकुल नहीं देखा जा सकता। केरल में राजनैतिक महौल के साथ-साथ आर्थिक उन्नति के लिए भी शिक्षा को एक हथियार बनाया गया था। समाज में हाशिए पर रहने वाले तबकों के बीच हुए आंदोलनों (जैसे-नारायण गुरू एवं अय्यन काली के नेतृत्व में) का असर यह भी था कि दबे-कुचले तबकों ने भी अपने विकास के लिए पाठशालाएं खोलीं। और आज भी केरल में शिक्षा के क्षेत्र में इसका जबरदस्त हस्तक्षेप देखने को मिलता है।

कुछ और अनूठे उदाहरण लेकर बात की जाए तो केरल की व्ही.एन.के.पी.एस. (व्ही. एन. केसब पिल्लई मेमोरियल लाईब्रेरी) नाम से जानी जाने वाली, एरनाकुलम जिले के वेलायनचिरंगरा गांव में स्थिति इस महत्वपूर्ण लाईब्रेरी का 55 साल का सुनहरा इतिहास रहा है। इस पुस्तकालय ने न सिर्फ शिक्षा, स्वास्थ्य, कला संस्कृति एवं खेल के मामलों में बल्कि इसने यहां के ग्रामीण समुदाय की जिंदगी को बेहतर बनाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके अतिरिक्त चलित पुस्तकालय के अंतर्गत ग्रामीण विस्तार कार्यक्रम में महिला लाईब्रेरियन गांवों में घर-घर जाकर सप्ताह में एक बार पुस्तकें उपलब्ध करवाती हैं। पुस्तकालय की अपनी एक मासिक

हस्तलिखित पत्रिका भी पुस्तकालय की स्थापना के शुरूआती दौर से ही निकल रही है जिसमें स्थानीय बच्चों में जागरूकता लाना, उनमें पढ़ने-लिखने के कौशल विकसित करना आदि शामिल है। हालांकि इसका सबसे पहला अंक 1945 में प्रकाशित हुआ था। उस समय इसे साहिती लता के नाम से जाना जाता था। बाद में गिरते-पड़ते पुन: संभल गई और अब तक प्रकाशित हो रही है। हालांकि इसका नाम एवं संपादकीय टीम कई बार बदले गए परन्तु अब यह नए 'आग्नेयम' नाम से प्रकाशित हो रही है। यह एक ऐसा प्रयास है जिसने अब तक भाषा और साहित्य के विद्यार्थियों एवं नवयुवकों की कई पीढ़ियों को अपनी ओर आकर्षित किया है और उनके ज्ञान को समृद्ध बनाया है।

व्हीएनकेपीएस लाईब्रेरी का काम सिर्फ पुस्तक संस्कृति के प्रचार-प्रसार तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसके अपने कई और कार्यक्रम भी हैं जो सालभर चलते रहते हैं जिसमें विभिन्न तबकों एवं अलग-अलग क्षेत्र के लोगों को इसमें शामिल किया है। इनके साल भर किए जाने वाले कार्यक्रमों में-पुस्तक सेमीनार, कार्यशालाएं, प्रशिक्षण कार्यक्रम, साक्षरता कार्यक्रम, स्वास्थ्य प्रशिक्षण, पंचायतकर्मियों के लिए प्रशिक्षण, खेल प्रतियोगिताएं, साहित्यिक प्रतियोगिताएं, कहानी लेखन, नाट्य कार्यशालाएं आदि विद्यार्थियों, युवाओं, ग्रामीण मजदूर महिलाओं, पुरुषों एवं सामान्य जन के लिए किए जाने वाले जागरुकता कार्यक्रम शामिल हैं इन सब कामों में स्थानीय एवं बाहरी शासकीय एवं गैर शासकीय संस्थाओं जैसे केरला शास्त्र साहित्य परिषद (केएसएसपी) की भरपूर मदद ली जाती है और ये लोग भी इसमें हर तरह की मदद के लिए तत्पर रहते हैं। इस तरह के कार्यक्रम ज्यादातर गरीब तबके के लोगों को रोजगार मुहैया कराने, उन्हें राजनतिक एवं सामाजिक रूप से जागरूक करने के उद्देश्य से किए जाते हैं ताकि लोग शिक्षित होकर आर्थिक रूप से सक्षम बने और अपनी जिन्दगी को बेहतर ढंग से चला पाएं।

बंगाल का तो अपने आप में एक अद्‌भुत उदाहरण है। वहां पाठक सर्वोपरि है। प्रतिष्ठित अखबार वहां लाखों की संख्या में बिकते हैं। आनंद बाजार लाखों में छपता है। बंगाल में सभ्य माने जाने के लिए घर पर किताबों का होना जरूरी है । अखबारों और पत्रिकाओं के वहां विशेषांक जबर्दस्त खरीदे जाते हैं। गौरतलब है आधुनिक साहित्य और लघु पत्रिकाओं के बारे में जाने बगैर, कुछ सृजनात्मक लिखे बिना बंगाल में स्नातक की डिग्री तक हासिल करना मुश्किल काम है। पुस्तक मेलों में न जाना, पुस्तकालय का सदस्य न होना और घर में अच्छी किताबों का न होना शर्म की बात मानी जाती है। इतना ही नहीं राजनेताओं के लिए भी बंगाल में साहित्य, संगीत, कला और संस्कृति की तमीज होना अनिवार्य समझा गया है। बंगाल में कोलकाता के अलावा जिला मुख्यालयों, छोटे-छोटे शहरों, कस्बों एवं गांवों तक में पुस्तक मेले को विकास का पर्याय माना जाता है। कोलकाता राष्ट्रीय सग्रहालयों में प्रकाशित पुस्तकों की प्रतियां भेजना कानूनन जरूरी है। हिन्दी में कोई साहित्यकार बच्चों के बारे में इतनी गंभीरता से नहीं लिखता जबकि बंगाल में बच्चों की किताबें सबसे अधिक बिकती हैं। पिछले तीन दशक से कोलकाता में हर साल पुस्तक मेले आयोजित होते रहे हैं। जिसमें सैकड़ों छोटे-बड़े स्टॉल लगते हैं और लाखों की संख्या में लोगों की भागीदारी होती है। साथ ही करोड़ों की किताबों को पाठक खरीदते हैं और इस तरह के छोटे-बड़े मेले बंगाल में सालभर चलते रहते हैं। जन समाजों में अच्छा साहित्य पढ़ने की परम्परा रही है वहां के समाज अन्य समाजों की अपेक्षा बौद्धिकता के नजरिए से ज्यादा समृद्ध और सम्पन्न हो रहे हैं।

हालांकि पुस्तकालय को लेकर हमारे यहां भी इधर कुछ नये काम हुए हैं। पिछले कुछ सालों से सरकार ने राजीव गांधी फाउंडेशन की ओर से देश को विशेषकर हिंदी भाषी राज्यों के ग्रामीण इलाकों में पुस्तकालयों की स्थापना की गई है जिसके परिणाम भी अच्छे दिखाई पड़ रहे हैं। उधर राजस्थान में जयुपर स्थित विशाखा संस्था एवं म.प्र. में होशंगाबाद में एकलव्य के बाल समूह द्वारा संचालित किए जा रहे पुस्तकालयों के जरिए ग्रामीण क्षेत्रों में वैकल्पिक पुस्तकालयों के रूप में अपनी एक अलग ही पहचान बनाई है।

मामला दरअसल दूसरा है । किताब अब हमारी जिंदगी में पहले पायदान से खिसककर अंतिम पायदान पर पहुंच गई हैं बल्कि यूं कहना ज्यादा सही होगा कि वह बाकायदा एक व्यस्थित राजनीतिक व्यूह रचना के तहत पहुंचा दी गई हैं। किताब का स्थान लगातार गिरता जा रहा है। दरअसल भारत जैसे विकासशील देश में जिसकी अपनी शिक्षा की स्थिति दोयम दर्जे की है, जोकि विकसित देशों की तुलना में काफी गई-गुजरी सी जान पड़ती है, ऐसे में किताब का स्थान संभवत: हमारे भोजन के बाद आता है। फिर भी आज अगर कोई कहे कि हिंदी भाषी लोगों में पढ़ने के प्रति रुचि लगातार घटती जा रही है। मुझे लगता है ये अब पुराना जुमला हो गया है। अब इस तर्क से सहमत नहीं हुआ जा सकता कि लोग किताबें नहीं पढ़ते। आप देखिए तमाम जगहों पर आज जो अखबारों की भरमार हो गई है, जो कि पचास हजार से ढाई-तीन लाख तक की संख्या में बिकते हैं। ये सब कहीं तो जाते होंगे ? सचमुच अगर लोगों में पढ़ने का शौक अब नहीं रहा है तो फिर इन्हें कौन पढ़ता होगा ? जाहिर है लोगों में पढ़ने की जिज्ञासा व रुचि अब भी मौजूद है

बल्कि अपेक्षाकृत बढ़ी है। रहा सवाल किताबों के महंगी होने का तो हम लोगों की मानसिकता कीमती जूते और कोट खरीदने की तो है लेकिन पुस्तक खरीदने की नहीं।

बहरहाल जहां तक बच्चों के बीच पुस्तक संस्कृति को बढ़ावा देने की बात है उनके साथ भी कमोबेश यही स्थिति है। मैं एकलव्य की अपनी लाइब्रेरी से बात शुरू करूं तो शायद इससे कुछ मदद मिले । आप अगर बच्चों को उनकी मन पसंद किताबें चुनकर पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करेंगे तो यकीन मानिए बच्चे सचमुच अच्छी किताबें पढ़ना चाहते हैं। बशर्ते कि आप उनकी रुचि को परखकर उसे जानने-समझने की जरूरत महसूस करें। ये देखें कि वे किस तरह की किताबें पढ़ना पसंद करते हैं, कौन-सी चीज किताबों में उन्हें रुचिकर लगती है, क्या वे चित्र देखकर, रंग देखकर, उसका आकार देखकर, कवर देखकर, उसकी छपाई देखकर, उसका कंटेंट देखकर या फिर उसके अंदर के अक्षरों का साईज देखकर । ये तमाम बातें हैं जिन पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत है। इन सब चीजों की पुस्तक चयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अगर आप इन चीजों की तह में जाकर जांचने-परखने की कोशिश करेंगे तो यकीनन आप ये जान पाएंगे कि बच्चे कितनी बारीकी से चीजों को देखने की दृष्टि अपने पास रखते हैं। यह जानकर आपको आश्चर्य होगा। बच्चे किताबों में अपने आसपास की दुनिया से एक खास तरह का रिश्ता बनाने की कोशिश करते हैं। अगर आप उन्हें कोई दिलचस्प कहानी, कविता, रोल प्ले, कहावत आदि रोचक ढंग से मय अभिनय के प्रस्तुत करके देखें तो वाकई वे जिस स्वभाविकता और सहजता से तल्लीन होकर अपनी उपस्थिति दर्शाते हैं, आप दंग रह जाएंगे। पर ये जरूरी है कि वह दिलचस्प और रुचिकर हो। जब आप ऐसा कर रहे होते हैं तो आप देखेंगे कि वे इस दरम्यान अपनी एक अलग ही कल्पना की दुनिया में उड़ान भरने लगते हैं और खो जाते हैं । यही वह बात है जिसमें बच्चों की सृजनशीलता उभरकर पूर्ण रूप से सामने आती है और वे दुनिया को एक बेहतरीन और खूबसूरत नजरिए के साथ देखने के सपने बुनने लगते हैं। यह सब हमने बच्चों के साथ करके सीखा है।

हमें यह जानने की कोशिश करनी चाहिए कि बच्चे अपनी स्वभाविकता, सहजपन और रुचि तभी दर्शाते हैं जब कोई चीज उन्हें रुचिकर और आनंददायी लगे। स्वभाविक है जहां आनंद और रुचि होगी बच्चे उस ओर सहज रूप से आकर्षित होंगे। यही वह खूबसूरत मोड़ है जहां से बच्चों के सीखने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। इस तरह की प्रक्रियाओं से गुजरकर जब बच्चे धीरे-धीरे आगे कदम बढ़ाते हैं तो वे ये जानने-समझने लगते हैं कि उनके अंदर ऐसा कौन-सा हुनर है जिसे वे पहचान पा रहे हैं और उसमें महारत/दक्षता हासिल कर सकने की संभावना तलाशते हैं। ये बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। जिस पर हमें गंभीरता से सोचना चाहिए। ऐसी चीजों को अक्सर हमारे समाज में अहम नहीं माना जाता। अब तक सरकारी शिक्षण संस्थाओं के संबंध में फिर भी यह बात कुछ सीमा तक महत्त्व की हुआ करती थी चूंकि वहां थोड़ी बहुत गुंजाइश फिर भी हुआ करती थी। बच्चों को स्वतंत्रतापूर्वक खेलने-कूदने और मोज-मस्ती के लिए जिसमें वे अपनी स्वभाविक प्रवृत्ति को जिंदा रख पाते थे। आज हालात दूसरे हैं। वर्तमान में कान्वेंट संस्कृति के स्कूलों ने जो कुकुरमुत्तों की तरह हमारे आसपास इस कदर उग आए हैं कि उन्होंने बच्चों की स्वभाविकता उनके सहजपन को पूरी तरह तहस-नहस कर दिया है। यह दीगर बात है कि बहुतायत में अभिभावक आज इसी बात को समर्थन देते हैं। आज बच्चे अपनी इस स्वभाविक प्रकृति को खोकर लगातार असहज और औपचारिक होते जा रहे हैं। और यह सब विवश होकर होते रहने को देखने के लिए हम मजबूर हैं। हमें अब सचमुच थोड़ी देर ठहरकर सोचना चाहिए कि आखिर ऐसा क्यों है ? ◆

शिक्षा विमर्श

शैक्षिक चिंतन एवं संवाद की पत्रिका

शिक्षा–विमर्श *लेखकों से शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े विभिन्न सामाजिक राजनैतिक विषयों पर हिन्दी में लेख, शोधपत्र व विचार आमन्त्रित करती है।*

लेख सुपाठ्य/टाइप किए हुए तथा कागज पर एक ओर लिखे होने चाहिए।

लेखों के प्रकाशन से संबंधित सूचना देने में समय लग सकता है।

भेजी गई सामग्री की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें क्योंकि अस्वीकृत रचना वापस भेजने में बिलम्ब हो सकता है।